ओ३म्

सामाजिक स्तुति प्रार्थनोपासना.

अर्थात्

विदेशियों के इस प्रश्न का उत्तर

कि

बेदों में थोक बांध ईश्वरोपासना करना नहीं है।

अथवा

चारो बर्ण पूर्व में एक सूत्र से बँधे न थे उनमें
ऐसा ही सत्यानाशी छुआ छूत का बिचार था
जैसा कि अब है।

3512
दयानन्द महिला मह...

श्रीयुत पण्डित गणेशप्रसाद शर्म्मा सम्पादक भारत सुदशा प्रवर्त्तक
फ़र्रुख़ाबाद प्रदत्त.

बैदिक पुस्तक प्रचारक फण्ड फ़र्रुख़ाबाद की सहायता से

फ़र्रुख़ाबाद

"गोधर्म्मप्रकाश" नामक यन्त्रालय में मुद्रित.

प्रथम वार ५०० प्रति | सन् १८९७ ई० | प्रति पुस्तक मूल्य)॥

सामाजिक स्तुति प्रार्थनोपासना ॥

—:*:०:*:—

मनुष्य का सब से प्रथम कर्त्तव्य क्या है ?

जब इस प्रश्न को हम सम्यक् समीक्षा करते हैं तो अन्तरात्मा में यही भान होता है कि हमारा प्रधान और पहिलाकाम ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना है। परमात्मा हमारे जीवन का जीवन, आत्मा का आत्मा और प्राणों का प्राण है. इस बातको ब्रह्मासे लेकर आजतक जितने ऋषि मुनि महात्मा जन हुए सभी मानते आए हैं। अहो !! तो क्या ऐसी प्रिय और सुख मूल वस्तु को किसी काल और दशामें बिसारना चाहिए ? कदापि नहीं ! एक बालक तक अपने जीवनाधार मातृ के स्तन को नहीं तजता । क्या हम बालक से भी अधिक अबोध नहीं हैं जो ईश्वर भक्ति से इन दिनों विमुख हो रहे हैं। भारतका एक समय वह था जब कि आर्यप्रजा एक स्वरहो वेद मन्त्रोंसे ईश्वरोपासना करती थी। घर घर और बनोपबन में ओंकार की गूंज भरी रहती थी. सभा समुदाय (मेला) और उत्सवों पर प्रार्थना होतीथी। रोग शोक और भय संकष्ट में उसी प्रभु से पुकार की जाती थी। हाय काल क्रम से हमारी वह मर्य्यादा जाती रही–वेदों का लोप होगया. उनके स्थान में लवेद प्रचलित हो गए। जिस कारण भिन्न२ मत, भिन्न भिन्न उपासना, भिन्न२ भाव और भिन्न२विश्वास होगए। फल यह हुआ कि परस्पर फूट फैल गई। जनबल, धनबल, विद्या और बुद्धिबल सब नष्ट हो गया। पराधीनता की बेड़ी हमारे पैर पड़ी–अब दिनों दिन दुःख की गठरी भारी पड़ती जाती है. तौ भी चेत नहीं होता ॥

संसार में जितनी कुछ घटनाएं हुई हैं–उनपर दृष्टि पात करने से बोध होता है कि किसी समूह का वृद्धि क्षय ईश्वरकी उपासना वा विमुखता पर हो हुआ है।

यहउपासनादोप्रकारकी वेदोंमेंहै.एकव्यष्टिभावसेदूसरोसमष्टिरूपसे

व्यष्टिरूप उपासना वह है जो प्रातः काल शुचि पूर्वक प्राणायाम द्वारा मन स्थिर करके एकान्त में की जाती है. जिसका फल बुद्धि

ुद्धि और दुर्गुणों का नाश है. और कालान्तर में यही मोक्षपद की भी ोपान (नसेनी) है।

समष्टिरूप उपासना उसे कहते हैं जो जन समूह के साथ कीजाती ै। जिसका फल परस्पर प्रेम प्रीति का बढ़ना, देश की ममता और हानुभूति उपजना, विजय लक्ष्मी और राज्य का विस्तार पाना और जा में निरन्तर विद्या शिल्पादि सद्गुणों की वृद्धि होकर सुख आ-ान्द होना है॥

इन दिनों हमारे देश में समष्ट्युपासना की शृंखला टूट गई है। सी से हमारी वह मत्तगजराजसम सम्राट को भी स्वाधीन रखनेवाली ार्यों की रज्जु शक्ति भग्न होगई है. बरन बहुतों का ऐसा बिचार (ख्याल) होगया है कि मानों वेदों में समष्ट्युपासना हैही नहीं। वि-देशी हम पर आक्षेप करते हैं कि वेदों में एक जाति अर्थात् वर्ण नहीं न समूह द्वारा उपासना की विधि है। हमारे एक मित्र मौलवी साहब एक दिन कहने लगे कि हिन्दुओं में मिल जुल कर नमाज पढ़ने का तरीका नहीं, इसी से आपस में एका और हमदर्दी भी नहीं-हम लोगों के हज़रत पैग़म्बर ने एक जा होकर नमाज़ पढ़ने का बहुतसवाब लिखा है "और इस तरीके से दीन इसलाम की मजमूई ताक़त ने मज़बूती पकड़ी है,,।

इसमें कुछ सन्देह नहीं कि जिसमतके प्रवर्त्तक ने ईश्वरका आश्रय लिया उसी ने उन्नति और विस्तार पाया। ईसाने एक ईश्वर की उपा-सना बताई। पश्चात् महम्मद ने भी एक ही प्रभु की स्तुति गाई—और े दोनों धर्म इसी से उन देशों में उन्नत हुए जहां के लोग अपने जंग-ीपने से ईश्वर को पहिचानते न थे-अथवा यों कहिए कि किसी सभ्य ेश के सुजन आलसी बन कर परम पिता से विमुख हो रहे थे। भारत र्ष में भी मुसल्मानों का पांव तभी पड़ा जब घोर रूप से यहां अनेक वी देवता पुजने लगे थे और समष्टि उपासना का नाम भी शेष न हा था। थानेश्वर के घोर युद्ध में आर्यों के रुधिर के प्यासे शहाबुद्दीन हम्मद ग़ोरी के दल में जिस समय एक स्वर अल्लाहो अकबर की गूंज

होती थी. उस काल राजेन्द्र पृथीराज की सेना में आशापर्णा देवीके जय जय पुकारी जाती थी। कप्तान टाडसाहब के लेखानुसार यही देवी दिल्लीवालोंकी कुलदेवीहैं। अस्तु आशापूर्णाहीपर इतिश्री न थी. गंग जमुना आदिनदियां, भैरव हनुमान और गौरी गणेशादि देवीदेव भी म नाएजाते थे। अन्तमें आर्य गौरवका सूर्य अस्तहुआ। यवनोंका राज्या धिकार होगया। एक देवकी उपासनाके बल से वह राज्य प्रत्यह विस्तृ होतागया। तदनन्तर यवनराजगण आमोद प्रमोदमें डूब गए। वह सम ष्टि उपासना नाम मात्र रह गई. हिन्दू मन्दिरों की भाँति मसजि मक़बरों में भी भांड भगतुए नाचने लगे। फल इस का यह हुआ कि मुसल्मानों का राज्य भारत वर्ष से जाता रहा। हिन्दुओं की तरह वे भी परबन्धन में फँस गए। ईश्वर भक्त बृटिशजाति को विजय बैजयन्ती फहराने लगी-खीष्ट धर्मी गिर्जे में जाने के अबतक पाबन्द हैं। इंगलेंड के सब बाज़ार और कारख़ाने इतवार को बन्द रहते हैं। ईश्वर प्रेमी बड़े चाव से धर्ममन्दिरों में थोकबांध उपासना करते हैं-और करोड़ों रुपया प्रति वर्ष स्वधर्म प्रचार में उठाते हैं।

हमारे वेद हमको निरन्तर उपदेश देते हैं कि-तुमलोग व्यष्टि और समष्टि उभय प्रकार से ईश्वरोपासना किया करो। परन्तु हम लोग तो वेदों को देखते ही नहीं, सुतराम् यहां तक भूलेहुए हैं कि मानों सामा जिक उपासना वेदों में है ही नहीं—

एक थोकहुए विना एकईश्वरको उपासनाकरनावालू की भीतके समान है. अतएवप्रथम यहदिखलाना अवश्य है कि आर्यावर्त्तमें प्राचीनकाल में एकही जाति व धर्म था—और जो विदेशी लोग "ब्राह्मणोस्य मुखमासी द्बाहू राजन्यः कृतः„ इस ऋचा का अर्थ न समझ कहते हैं कि वेदों ही में चार वर्ण हैं. भारत में एक कौम कभी न थी। पाठक प्राकृत मंत्र क यह अभिप्राय नहीं कि पूर्व काल में चारो वर्ण आठ कनौजिया नौ चूल्ह की कहावतके अनुसार एक दूसरेके हाथका न खाते हों, वा एक सर्वनिय ता जगदीश्वर को न मानते हों॥

अथवा सर्व मान्य वेद धर्म से विमुख हो जुदे २ देवी देवता पूजते हों ॥

ईश्वर का एकत्व और कर्मानुसार चार भागों में आर्य जाति का प्रादुर्भाव महत्व तो यह मंत्र अवश्य बताता है। जैसे कि मुख के तुल्य श्रेष्ठ गुण वाला वेद विद्यादि वागवैभव सम्पन्न ब्रह्मनिष्ठ सदुपदेश करने वाला ब्राह्मण। और भुजा (बाहु) के समान रक्षक बल पराक्रम शाली, क्षत्री, तथा जंघाकी भान्ति सर्व देशों में व्यापारार्थ भ्रमण करने योग्य वैश्य और तीनों वर्णों की चरण तुल्य सेवा करने हारा शूद्र है सो परमात्मा से प्रगट हुआ

पूर्व काल में आर्यों ने चार वर्ण और चार आश्रम संसार रूपी रथ को सुख से चलाने के लिये स्थिर किये थे, ज्ञान पूर्वक देखिये तो जन समूह का कर्म के विचार से चार थोक में बांधना बहुत ही उचित हुआ। पहिला काम धर्म तथा विविध विद्याओं का खोजना और प्रचार करना ! दूसरा कार्य दुष्टों को संग्राम में दमन कर प्रजा को सुख देना, राज प्रबन्ध करना। तीसरा व्यापार और खेती, आदिसे सर्व साधारण को आवश्यकीय पदार्थों का पहुचाना- और चौथा काम सब की सेवा है। ब्राह्मणों ने विद्या धर्म को विस्तृत किया, क्षत्रियों ने बाहुबल से रक्षा की, वैश्यों ने अभय हो धनोपार्जन में प्रवृत्ति की, और ब्राह्मण तथा क्षत्रियों को सहाय काल में धन प्रदान किया। ब्राह्मणों ने मुख के और क्षत्रियों ने बाहु के बल से राज्य में मंगल और शान्ति स्थापित की वैश्योंने द्रव्य से शोभा (रोनक) बढ़ाई शूद्रों ने भोजन बनाकर खिलाया और दूसरी२ सेवाओं से प्रजा में सुख फैलाया और न्याय से धन पाकर अपना निर्वाह किया इस प्रकार एक आर्य जाति बनगई उसी नाम से आर्यावर्त्त देश कहलाने लगा अब रहे चार आश्रम सो इस भांति थे कि पहिला ब्रह्मचर्य दूसरा गृहस्थ तीसरा वनस्थ चौथा संन्यास। पहिले में विद्या लाभ और ब्रह्मचर्य से रह शरीर को पुष्ट करना दूसरे में विवाह और सन्तानोत्पत्ति तथा उनका पालन पोषण और द्रव्योपार्जन, तीसरे में वनमें रह कर शीतोष्ण सहन करते हुये परमात्मा की भक्ति में मन लगाना होता था और चौथे में संन्यास अर्थात् सदुपदेश करना और यम नियम के सेवन सहित परमात्मा की योग ध्यान से उपासना करना यही साधन मोक्षदायक है।

इस प्रकार वर्णाश्रम गुण कर्मानुसार था शूद्रों के हाथ का पका ब्राह्मणादि खाते थे यह सुन बहुतेरे लोग चौंकेंगे परंतु इस में तो अनेक प्रमाण है, आपस्तंभ सूत्रों में स्पष्ट लिखा है कि "आर्याधिष्ठिता वा शूद्रः संस्कर्तारःस्युः" कि शूद्र लोग आर्यों की रसोई बनावें। महाभारत के घोर युद्ध राजसूय यज्ञ तथा स्वयम्वरादिकों में देश देशान्तर से राजा लोग एकत्र होते थे और छुआ छूत का भय छोड़ परस्पर पंगत बांध भोजन करते थे। इस समय में भी बाजारों

में शूद्रों की दूकानों से पूरी और मिठाई लोग लाकर खाते हैं पूर्वकाल यज्ञों में चारो वर्ण कर्मानुसार आदर पातेथे। और उनकी पूजा होती थी—वे सब लोग वेद मंत्रों की ध्वनि सुनते; हवन की सुगंध सूंघते, और प्रसाद पाते थे—मेलों में महत्समुदाय होता था, सब लोग हवन और एक प्रभु का ध्यान करते थे पाप कर्म के प्रायश्चित में एक जगदीश का भजन करके पवित्र होते थे। जब कभी देश में अवर्षण होता था तब सब लोग इन्द्र अर्थात् परमात्माकी पूजा यज्ञादि द्वारा करते थे, और इसका प्रचार श्री महाराज कृष्णचन्द्र के समय तक रहा भागवत में लिखा है कि श्रीकृष्ण ने इन्द्र की पूजा का निषेद करके कहा कि गिरिराज की पूजो, इस प्रकार लोक व्यवहार परस्पर की प्रीति महानुभूति, एक ईश्वर की पूजा और वेद पर श्रद्धा आर्य जाति में भेद भाव रहित थी। अर्थात् जाति [कौम] एकही थी— और उपासना भी दोनो प्रकार से की जाती थी जोकि नीचे लिखे वेद मंत्रों से स्पष्ट प्रमाणित है।

॥ व्यष्टि उपासना के मंत्र ॥

वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे धीतिश्च मे क्रतुश्चमेस्वरश्च मे श्लोकश्च मे श्रवश्चं मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च मे यज्ञेनं कल्पन्ताम् ॥१॥

पदार्थः—[मे] मेरा [वाजः] अन्न [च] विशेषज्ञान [मे] मेरा [प्रसवः] ऐश्वर्य्य [च] और उसके ढंग [मे] मेरा [प्रयतिः] जिस व्यवहार से अच्छा यत्न बनता है सो (च) और उसके साधन [मे] मेरा [प्रसितिः] प्रबन्ध [च] और रक्षा [मे] मेरी (धीतिः) धारणा (च) और ध्यान [मे] मेरी (क्रतुः) श्रेष्ठबुद्धि [च] उत्साह (मे) मेरी [स्वरः] स्वतंत्रता [च] उत्तम तेज [में] मेरी (श्लोक) पदरचना करने हारी वाणी [च] कहना [मे] मेरा [श्रवः] सुनना [च] और सुनाना (मे) मेरी (श्रुतिः) जिससे समस्त विद्या सुनी जाती हैं वह वेद विद्या [च] और उसके अनुकूल स्मृति अर्थात् धर्म शास्त्र [मे] मेरी (ज्योतिः) विद्या का प्रकाश होना (च) और दूसरे की विद्या का प्रकाश करना (मे) मेरा (स्वः) सुख (च) और अन्य का सुख [यज्ञेन] सेवन करने योग्य परमेश्वर वा जगत के उपकारी व्यवहार से (कल्पताम्) समर्थ होवें ॥

प्राणश्चं मे ऽपानश्चं मे व्यानश्चं मे ऽसुश्च मे चित्तं च मे ऽआधीतं च मे वाक च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं

च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेनं कल्पन्ताम् ॥२॥

य० अ० १८ म० २

पदार्थः—(मे) मेरो (प्राणः) हृदयस्थ जीवन मूल (च) और कण्ठ देश में रहने वाला पवन (मे) मेरा (अपानः) नाभि से नीचे को जाने [च] और नाभि में ठहर ने वाला पवन [मे] मेरे (व्यानः) शरीर की सन्धियों में व्याप्त (च) और धनंजय जोकि शरीर के रुधिर आदि का बढ़ाता है वह पवन (मे) मेरा (असुः) *नाग आदि प्राण का भेद (च) तथा अन्य पवन (मे) मेरो (चित्तम्) अन्तःकरण की वृत्ति अर्थात् सुधि रहनी च और बुद्धि [मे] मेरा (आधीतम्) अच्छे प्रकार किया हुआ निश्चित ज्ञान (च) और रक्षा किया हुआ विषय (मे) मेरी [वाक्] वाणी (च) और सुनना [मे] मेरी मनः संकल्प विकल्प रूप अन्तःकरण की वृत्ति [च] अहंकार वृत्ति (मे) मेरा (चक्षुः) जिससे कि मैं देखता हूं वह नेत्र (च) और प्रत्यक्ष प्रमाण [मे] मेरा श्रोत्रम् जिससे कि मैं सुनता हूं वह कान (च) और प्रत्येक विषय पर वेदका प्रमाण (मे) मेरी (दक्षः) चतुराई (च) और तत्काल मान होना तथा (मे) मेरा (बलम्) बल (च) और पराक्रम ये सब (यज्ञेन) धर्म के अनुष्ठान से कल्पन्ताम् समर्थ हों

और भी—'अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इद मह मनृतात्सत्यमुपैमि

यजु अ० प्र० म० ५

हे (व्रतपते) सत्य भाषण आदि धर्मों के पालने और (अग्ने) सत्य उपदेश करने वाले परमेश्वर मैं (अनृतात्) झूठ से अलग हो (सत्यं) वेद विद्या प्रत्यक्ष आदि प्रमाण सृष्टि क्रम विद्वानों का संग श्रेष्ठ विचार तथा आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारों से जो निर्भ्रम सर्वहित तत्व अर्थात् सिद्धान्त के प्रकाश कराने हारों से सिद्ध हुआ अच्छी प्रकार परीक्षा किया गया (ऋतं) सत्य बोलना सत्य मानना और सत्य करना है उसका (उपैमि) अनुष्ठान अर्थात् नियम से ग्रहण करने वा जानने और उसकी प्राप्ति की इच्छा करता हूं (मे) मेरे (तत्) उस सत्य व्रत को आप (राध्यताम्) अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिए जिससे (अहं) मैं उक्त सत्य व्रत के नियम करने को (शकेयं) समर्थ होऊं और मैं (इदं) इस प्रत्यक्ष सत्यव्रत के आचरण का नियम (चरिष्यामि) करूंगा ॥

इसी प्रकार नीचे लिखे मंत्र समष्टि रूप उपासना (वहैसियत मजमूई) के निमित्त हैं ॥

*नाग आदि दश प्राण होते हैं ॥

॥ समष्ट्युपासना ॥

गणानांत्वा गणपतिछंहवामहे प्रियाणांत्वा प्रियपतिछं हवामहे निधीनात्वानिधिपतिछंहवामहे वसो मम आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम् ॥ य० अ० २३ मं० १९

हे जगदीश्वर हम लोग ।गणानाम्। गणों के बीच ।गणपतिम्। गणों के पालने हारे ।त्वा। आपको ।हवामहे। स्वीकार करते हैं ।प्रियाणाम्। अति प्रिय सुन्दरों के बीच ।प्रियपतिम्। अति प्रिय सुन्दरों के पालने हारे ।त्वा। आपको ।हवामहे। प्रशंसा करते ।निधीनाम्। विद्या आदि पदार्थों को पुष्टि करने हारों के बीच ।निधिपतिम्। विद्या आदि पदार्थों को रक्षा करने हारे ।त्वा। आपको ।हवामहे। स्वीकार करते हैं हे ।वसो। परमात्मन् आप में सब प्राणी बसते हैं सो आप ।मम। मेरे न्यायाधीश हूजिए। जिस ।गर्भधम्। गर्भ के समान संसार को धारण करने हारी प्रकृति को धारण करने हारे ।त्वम्। आप ।अ। अजासि जन्मादि दोष रहित भली भांति प्राप्त होते हैं, उस ।गर्भधम्। प्रकृति के धर्मा आपको ।अहम्। मैं ।आ अजानि। अच्छे प्रकार जानूं ॥

भावार्थ-कि एक समुदाय की ओर से सर्व सम्मत हो एक पुरुष-खड़ा होकर कहता है कि ईश्वर आप हम लोगों और संसार के बीच राजा ।मालिक। हैं, मैं आपको ही भजूं अर्थात् हमारे थोक ।जमात्। के आप भजनीय इष्ट देव हैं, फलतः परमात्मा आज्ञा देते हैं कि तुम इस विधि से मेरी स्तुति व प्रार्थना किया करो ॥

इसी प्रकार जब शत्रुओं अर्थात् प्रजा पीड़क दुष्ट पुरुषों से संग्राम उपस्थित हो उस समय प्रार्थना करने की इस प्रकार परमेश्वर की आज्ञा है ॥

"वयं जयेम त्वया पुजा वृतमस्माकमंशमुद वा भरेभरे। अस्मभ्यमिन्द्रवरिवः सुगंकृधि प्रशत्रूणांमघवन् वृष्णयारुज ॥ ऋग्वेद अ० १।७।१४।४

हे इन्द्र परमात्मान् ।त्वया युजा वयं जयेम। आप के साथ वर्त्तमान आप के सहाय से हम लोग दुर्जनों को जीतें-जोकि ।वृतम्०। हमारी सेना से घिरे हुए हैं, ।भरेरे। प्रत्येक युद्ध में हम लोगों की रक्षा करो-जिससे हम पराजित न हों शत्रूणां कृष्णा हमारे शत्रुओं के वीर्य पराक्रम को भग्न कीजिये, ।अस्म०। हम लोगों को ।वरिवः। अपनी सेवा ।सुगंकृधि। सरल कीजिये,

ईश्वर की कृपा और सेनापति के पुरुषार्थ से पापी जनों को जीतना, इस मंत्र का अभीष्ट है.

भद्रंकर्णेभिः श्रणुयाम देवा भद्रं पश्ये माक्षाभर्यजत्राः। स्थिरै रंगैस्तुष्टुवाछं सस्तनू भिर्व्यशेमहि देवहितंयदायुः य० अ० २५ म० २१ ॥

हे ।यजत्राः। संग करने वाले ।देवाः। विद्वानों आप लोगों के साथ से हम ।कर्णेभिः। कानों से ।भद्रम्। जिससे सत्यता जानी जावे उस बचन को ।श्रणुयाम। सुनें ।अक्षाभिः। आखों से ।भद्रम्। कल्याण को ।पश्येम। देखें ।स्थिरैः। दृढ़ ।अङ्गैः। अवयवों से ।तुष्टुवांसः। स्तुति करते हुये ।तनूभिः। शरीरों से ।यत्। जो ।देवहितम्। विद्वानों के लिये सुख करने हारी ।आयुः। अवस्था है उसको ।वि अशेमहि। अच्छे प्रकार प्राप्त हों

अर्थात् परमपिता आज्ञा देते हैं कि तुम लोग विद्वानों के संग लाभ और समुदाय से मेरी स्तुति कर दीर्घायु होने की प्रार्थना करो -

संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानतां। देवाभागं यथा पूर्वे संजानाना मुपासते ॥

तुम लोग साथ चलो, साथ बोलो एक दूसरे का मन प्रसन्न रक्खो और विद्वानों के सहवास से परमेश्वर की उपासना करो.

तैत्तिरीय आरण्यक के नवें प्रपाठक के पहिले अनुबाक में जो नीचे लिखा मंत्र है वह पूर्ण शिक्षा इस बात की देता है कि परस्पर मेल रक्खो, जब तक तुम्हारा एक समुदाय न होगा कभी सुखी न होगे

ओ३म् । सहनाववतु सहनो भुनक्तु सह वीर्य्यं करवाव है । तेजस्विना वधीत मस्तु । माविद्विषाव है ॥ ओ३म् शान्तिः ३

हम लोग एक दूसरे की रक्षा करें—परस्पर सुख भोगें और पुरुषार्थ बढ़ें- हम लोगों की विद्या आप की कृपासे प्रकाशित हो माविद्विषावहै—हम लोग परस्पर विरोध कभी न करें—और कृपा करके आप हमारे त्रिविध ताप दूरकरें

इस प्रकार वैदिक विधि से प्राचीन आर्य लोग पृथक पृथक और समूह परमात्मा की स्तुति प्रार्थना करते और अपनी जाति की शृंखला दृढ़ रखतेथे

इति

गुरु [illegible]नन्द [illegible]
[illegible]
पु पंजीकरण [illegible]
[illegible]
3512